ज्ञानी और अज्ञानी कौन ?

● बाबा श्रीशाही स्वामीजी महाराज

पूज्यपाद बाबा श्रीशाही स्वामीजी महाराज का यह प्रवचन अ० भा० संतमत-सत्संग के ६४वाँ वार्षिक महाधिवेशन के शुभ अवसर पर ग्राम-बेलदौर, जिला-खगड़िया (बिहार) में दिनांक ५.३.२००५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था। प्रेषक– गुणसागर दास

मंगल मूरति सतगुरू, मिलवैं सर्वाधार। मंगलमय मंगल करण, विनवौं बारम्बार॥
ज्ञान-उदधि अरु ज्ञान-घन, सतगुरु शंकर रूप। नमो-नमो बहु बार ही, सकल सुपूज्यन भूप॥

उपस्थित धर्मानुरागी सत्संगप्रेमी सदात्माओ, माताओं एवं बहनो !

अभी स्वागत-गान, अभिनन्दन-पत्र के माध्यम से आपलोगों ने जो हमारी प्रशंसा की बातें सुनीं।

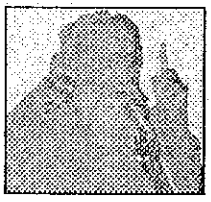

मेरे जानते तो बातें वैसी ही रहीं, जैसे कोई माई दही बेच रही थी। किसी ने पूछा, माई ! दही कैसा है ? कहा, बाबू गुड़ मिलाकर खाओगे तो बढ़िया लगेगा। दरअसल, मैं कैसा हूँ, मैं ही जानता हूँ; फिर भी आपलोगों ने मेरी प्रशंसा की बातें कहीं, वह मैं अपने लिए आशीर्वाद समझता हूँ। यह आयोजन जिसमें हम-आप जहाँ-तहाँ से एकत्र हुए हैं, यह अखिल भारतीय सन्तमत-सत्संग का ९४वाँ वार्षिक महाधिवेशन है। इस आयोजन के माध्यम से सन्तों के ज्ञान का प्रचार होता है। सन्त से तात्पर्य, जिनके दुःखों का हो गया है अंत, जिनकी वासनाओं का हो गया है अंत, जिनको माता के गर्भ में नहीं आना है। जिनके बारे में भगवान् राम ने भरतजी को कहा था–

विषय अलम्पट सील गुनाकर। परदुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम तेइ प्रानी॥
बिगत काम मम नाम परायन। सान्ति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धरम जनयत्री॥
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात सन्त सन्तत फुर॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥
निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज॥
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन मन्दिर सुख पुंज॥

महोपनिषद् में आया है–

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

जिनके हृदय की गाँठ खुल गई है, जिनके संशय का नाश हो गया है, जिनका कर्मबन्धन समाप्त हो गया है, जिनकी दृष्टि परे-से-परे अर्थात् परमात्मा का दर्शन करती है, वे संत हैं। हृदय की गाँठ खुल गई से तात्पर्य यह है कि हम-आपका जो शरीर है, क्या है ? इसको स्थूल कहते हैं। यह जड़ है, इसमें रहनेवाले हम चेतन हैं। जड़ कहते हैं अज्ञानमय पदार्थ को। चेतन कहते हैं ज्ञानमय पदार्थ को । हम इसमें ज्ञानमय पदार्थ हैं। किस तरह से हैं, जिस तरह से दूध में घी होता है। दूध में घी जर्रे-जर्रे में, परमाणु-परमाणु में व्यापक होकर रहता है। उसी तरह से हम शरीर में व्यापक होकर हैं। इसीलिए पैर पर चींटी चढ़ जाती है, तो मालूम हो जाता है। सिर पर मक्खी बैठ जाती है तो मालूम हो जाता है। इसलिए कि हम नख से शिख तक भरे हुए हैं। जिन्होंने इस शरीर से अपने को अलग कर लिया, जिस तरह दूध से घी लोग अलग कर लेते हैं, उन्हीं के बारे में कहा गया है–

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

जिन्होंने अपने को अलग कर लिया तो क्या हुआ ? जैसे दूध से घी को अलग कर लिया जाता है तो क्या होता है ? उस घी से कुछ ऐसा काम होता है जो दूध में रहनेवाले घी से नहीं हो सकता। जैसे पूरी-मिठाई आदि बनाने का काम। उसी तरह से जिन्होंने इस शरीर से अपने को अलग कर लिया, जिस तरह से हमलोग अपने शरीर के वस्त्रों को उतारते-उतारते शरीर को निर्वस्त्र कर देते हैं, उसी तरह वे अपने आपके ज्ञान में रहकर परमात्मा के ज्ञान में होते हैं। **यह ज्ञान सबसे ऊँचा ज्ञान, अन्तिम ज्ञान है। इस ज्ञान में जो सुख होता है, फिर दुःख का मुँह नहीं देखना पड़ता है।** संशय किसको होता है ? संशय होता है अज्ञानी को। अज्ञानी कौन ? जो पढ़ा-लिखा नहीं है ? पढ़-लिखकर कोई ज्ञानी नहीं होता। पढ़-लिखकर अगर ज्ञानी हुआ जाता, तो संत कबीर साहब ज्ञानी की कोटि में नहीं आते, इसलिए कि वे पढ़े-लिखे नहीं थे। उनके बारे में कहा गया है :

मसि कागद छुयो नहीं। कलम गह्यो नहिं हाथ॥

ऐसे थे संत कबीर साहब, लेकिन इतने ऊँचे दर्जे के ज्ञानी थे कि उससे ऊँचा ज्ञानी हुआ ही नहीं जाता।

अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥

ऐसे थे संत कबीर साहब। पढ़-लिखकर अगर ज्ञानी हुआ जाता, तो रामकृष्ण परमहंसजी महाराज ज्ञानी की कोटि में नहीं आते। उनकी जीवनी में मैंने पढ़ा है कि वे केवल अपना नाम किसी तरह लिख पाते थे—गदाधर। योग्यता ऐसी थी, लेकिन इतने ऊँचे दर्जे के ज्ञानी हुए, जिनके शिष्य स्वामी विवेकानन्दजी हुए। स्वामी विवेकानन्दजी महाराज विश्वधर्म सम्मेलन में गये थे अमेरिका के शिकागो में—१८९३ ई० के सितम्बर महीने में। १० सितम्बर से २५ सितम्बर तक विश्वधर्म सम्मेलन हुआ था। उसमें १३३ देशों के अध्यात्म-ज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान् आये थे। सबों ने उनके बारे में कहा था कि विद्वत्ता के परे के विद्वान् हैं। जो स्वामी विवेकानन्दजी महाराज थे, वे श्रीरामकृष्ण परमहंसजी महाराज के शिष्य कैसे हो गये। पढ़-लिखकर कोई ज्ञानी नहीं होता। आप देखिये, बहुत पढ़ा है लेकिन झूठ बोलता है, चोरी करता है, डकैती करता है। कितने तरह का दुष्कर्म करता है। ज्ञानी झूठ बोलेगा, ज्ञानी चोरी करेगा, नशा, हिंसा, व्यभिचार ज्ञानी करेगा ? हम कहते हैं, आपने अपने खाने के लिए भोजन बनाया है, क्या आप अपने हाथ से उसमें जहर मिलाइयेगा ? अगर आप अपने हाथ से जहर मिलाइयेगा, तो आपको ज्ञानी कौन कहेगा ? हर एक जानता है कि किये कर्मों का नतीजा होता है, किये का फल होता है। कर्म दो तरह का होता है—भला भी होता है, बुरा भी होता है। भले कर्म का फल अगर भला होगा तो सुख होगा, बुरे कर्म का फल अगर बुरा होगा तो दुःख होगा। कोई बुरे कर्म करके अगर दुःख अर्जित करता है तो उसको ज्ञानी कौन कहेगा ? लेकिन वह ऐसा करता है क्यों ? ज्ञान होता है प्रकाश में, अज्ञान होता है अंधकार में। अभी देखिये, सूरज का प्रकाश है। सूरज के प्रकाश में हमलोग ज्ञान कर रहे हैं। जब सूरज का प्रकाश नहीं रहेगा तो ज्ञान करने के लिए बिजली जलाइये, पेट्रोमैक्स जलाइये, लालटेन जलाइये या मोमबत्ती ही जलाइये, अगर ऐसा नहीं करेंगे, तो अंधकार में किस गड्ढे में गिरेंगे, किन चट्टानों से टकरा जायेंगे, क्या ठिकाना है ! कहने का तात्पर्य है, कि ज्ञान होता है प्रकाश में, अज्ञान होता है अंधकार में। अब हम-आप अपने को देखें—शरीर नहीं, शरीर में हैं। शरीर में हैं तो कहाँ हैं ? जिसको आप देखना चाहते हैं, अपनी दृष्टि को उसकी तरफ करते हैं। उसी तरह अपने को आप देखना चाहते हैं तो दृष्टि को आप अपनी तरफ कीजिये। अपनी तरफ अर्थात् आप तो शरीर के अन्दर में हैं, पहले बाहर का देखना बंद कीजिये अर्थात् अन्दर देखिये। अन्दर क्या देखते

हैं ? अंधकार देखते हैं। हरएक आँख बन्द करने के बाद अंधकार ही देखता है। इस अंधकार में हमलोग पड़े हुए हैं। इसी अंधकार में पड़े रहने के कारण राधास्वामीजी महाराज के वचन में है–

इस नगरी में तिमिर समाना, भूल भरम हर बार।

'इस' कहते हैं नजदीक की चीज को, 'उस' कहते हैं दूर की चीज को। नजदीक में अंधकार प्रत्यक्ष है। इसी अंधकार में रहने के कारण 'मन जानै सब बात', कौन नहीं जानता कि झूठ नहीं बोलना चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए, नशा, हिंसा, व्यभिचार नहीं करना चाहिए। इसका नतीजा दुःख होता है, कौन नहीं जानता ! फिर भी ऐसा करते हैं, क्यों ? इसी अंधकार में रहने के कारण।

मन जानै सब बात जानी बूझि अवगुण करै।

आपका घर है, आपने अपने घर में जो भी चीजें रखी हैं, वह अपने आराम के लिए रखी हैं, लेकिन उसी घर में आप प्रवेश करते हैं जब प्रकाश नहीं रहता है, तो उन्हीं आराम की चीजों से–पलंग है, टेबुल है, कुर्सी है–क्या-क्या है, टकरा जाते हैं, दुखी हो जाते हैं। प्रकाश रहता तो ऐसा नहीं होता। कहने का तात्पर्य हमलोग अंधकार में पड़े हुए हैं। लेकिन हम-आपके अन्दर अंधकार ही है, ऐसी बात नहीं है। केवल अंधकार ही होता तो ये आँख में रोशनी कैसे होती ? ये चेहरे पर चमक क्यों है, शरीर को छूने से वह गर्म क्यों मालूम होता ? स्पष्ट है, हम-आपके अन्दर प्रकाश भी है, शब्द भी है। ये प्रकाश और शब्द किसका है ? सन्त कबीर साहब के वचन में है–

घर घर दीपक बरै, लखै नहीं अन्ध है।
लखत लखत लखि पड़ै, कटै जमफन्द है॥

वह प्रकाश परमात्मा का है जो सबके अन्दर है, लेकिन अभ्यास करते-करते दिखाई पड़ जाएगा तो यम का फन्दा कट जाएगा। सूरज का प्रकाश हो गया, रात के अंधकार का दुःख चला गया, वह प्रकाश अगर मिल जाएगा तो सारे क्लेशों तथा दुःखों का अन्त हो जाएगा। वह कैसा प्रकाश है ? जिन्होंने अपने को अंधकार से उठाकर प्रकाश में पहुँचा दिया है, उन्हीं के बारे में कहा गया कि उनके संशय का नाश हो गया। संशय चला गया तो दुःख चला गया। जिनका कर्म-बंधन समाप्त हो गया, कर्म-बंधन कब तक ? जबतक कर्ममण्डल में ये हमारा-आपका शरीर है। आँख के नीचे पिण्ड कहलाता है और आँख के ऊपर ब्रह्माण्ड कहलाता है। आँख के नीचे ही सारी इन्द्रियाँ हैं। देखिये, आँख, कान, नाक, मुँह, जिह्वा जितनी भी इन्द्रियाँ हैं, इन्हीं इन्द्रियों से कर्म होता है। जबतक कर्ममण्डल में रहते हैं, तो कर्म-बंधन में रहते हैं और बंधन दुःखदायी होता ही है। अभी आपलोग इतनी संख्या में यहाँ बैठे हुए हैं–एक भी आदमी यह कहनेवाले हैं कि मुझे कोई दुःख नहीं है। दैहिक, दैविक, भौतिक दुःख से सबलोग दुखी हैं। जिन्होंने इस कर्ममण्डल से अपने शरीर को ऊपर उठा लिया, वे दुःख से छूट गये। जैसे आप भारत देश में रहेंगे तो भारत देश के विधान में आपको रहना पड़ेगा। भारत के विधान से बचना चाहते हैं, तो आप भारत देश को छोड़ दीजिए।

स्वामी दयानन्द सरस्वती राजस्थान में प्रचार कर रहे थे। उनके विरोधियों ने (विरोधी तो सबके हुए हैं, भगवान् राम के विरोधी हो गये, भगवान् कृष्ण के विरोधी हो गये, दयानन्द सरस्वती के विरोधी हो गये तो कौन-सी बड़ी बात हुई !) उनका भोजन बनानेवाले को फुसलाकर बहुत बारीक पिसा हुआ काँच दूध में मिलाकर पिलवा दिया। जब पी गये तो उनको मालूम हो गया। उन्होंने भोजन बनानेवाले को बुलाया और कहा, 'देखो जी, तुमने बहुत बड़ी गलती कर दी। अब हम बचेंगे नहीं। देखो, तुम एक काम करो– यहाँ से भाग जाओ। यहाँ हमारे परिचय के बहुत

लोग रहते हैं, वे तुम्हें बहुत दुःख देंगे। पुलिस भी तुम्हें बहुत मारेगी। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पास पैसे नहीं हैं, लो, मैं देता हूँ।' अपने पास से उन्होंने पैंतीस रुपये दिये और कहा तुम नेपाल चले जाओ। देखिये, संतों का हृदय कैसा होता है! अपने प्राणहर्त्ता के लिए भी उनका किस तरह का विचार है!

जल्लाद ने मंसूर का हाथ-पैर काट लिया, जब जिह्वा काटने लगा तब उन्होंने कहा, 'ठहरो, प्रार्थना करने दो, इबादत करने दो।' कहते हैं—'या खुदा! तुम मेरे इस प्राणहर्त्ता को क्षमा कर देना। ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। ये अबोध आपके बच्चे हैं। आप इनको क्षमा नहीं करेंगे तो कौन करेगा। अगर हमारे ऊपर आपकी मेहर है, तो इनको सद्बुद्धि देना।' कहने का तात्पर्य कि संतों का हृदय कैसा विशाल होता है!

कहने का मतलब जबतक कर्ममण्डल में रहेंगे, तबतक कर्मबंधन में रहेंगे और कर्म का बंधन जो होता है, वह बड़ा दुःखदायी होता है। जिन्होंने कर्ममण्डल से अपने को ऊपर उठा लिया अर्थात् पिण्ड से ब्रह्माण्ड में पहुँचा दिया। उन्हीं के बारे में कहा जाता है कि उनकी जो दृष्टि होती है परे-से-परे अर्थात् परमात्मा का दर्शन करती है। ऐसे जो हैं, संत हैं। ये ऊँचे परिवार में भी हुए हैं, निम्न परिवार में भी हुए हैं, पढ़े-लिखे भी हुए हैं, अनपढ़ भी हुए हैं, धनी भी हुए हैं, गरीब भी, अपने देश में भी हुए हैं और अन्य देशों में भी। हम जैसे साधु के वेश में भी हुए हैं और आप-जैसे सद्गृहस्थों के वेश में भी हुए हैं। ऐसे संतों का जो ज्ञान है, वह है सन्तमत। सन्तमत ऐसे ही सन्तों के विचारों का प्रचार है। आवश्यकता क्या है? आवश्यकता ही उद्योग की जननी होती है। अगर आवश्यकता नहीं समझें तो किसी भी काम को करें ही क्यों। हमारे परमाराध्य श्रीसद्गुरु महाराज के वचन में है—

सन्तमता बिनु गति नहीं, सुनो सकल दे कान।
जो चाहो उद्धार को, बनो संत संतान॥

(महर्षि मेँहीँ परमहंसजी)

आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बंधे जात जंजीर॥

(सन्त कबीर साहब)

कान खोलकर सुन लीजिये, जाना सबको है। जायेंगे तो कहाँ जायेंगे? 'एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बंधे जात जंजीर'—एक अच्छाई से अच्छाई में गये,एक बुराई से बुराई में गये। आप संतों का विचार सुनियेगा, संतों के मत में रहियेगा तो आप बुराई में नहीं, अच्छाई में जाइयेगा। दुःख में नहीं, सुख में जाइयेगा, अधोगति में नहीं, ऊँचे लोक में जाइयेगा। आपको संतों के विचार को सुनना है। सुनना होता है करने के लिए, करना होता है, पाने के लिए—पाने की जननी है करना और करने की जननी है सुनना। सुनोगे नहीं तो करोगे क्या? करेंगे नहीं तो मिलेगा क्या? अब विचारणीय बात है कि हरएक पाना क्या चाहता है? ऐसे तो इच्छा का अंत है नहीं। तुलसी साहब के वचन में है—'**एक दिल लाखों तमन्ना**' कितनी इच्छाएँ हैं ठिकाना नहीं। संत कबीर साहब के वचन में है—जिस तरह समुद्र में तरंगें उठती हैं, वैसे ही मन में इच्छा की तरंगें उठती हैं। समुद्र बहुत बड़ा होता है। भौगोलिक ज्ञान रखनेवाले जानते हैं कि एक हिस्सा थल और तीन हिस्सा जल है। धरती जितनी बड़ी है उससे तीन गुणा बड़ा समुद्र है। बहुत तरंगें उठती हैं, लेकिन मन में इच्छा की जो तरंगें उठती हैं, उसके सामने समुद्र की तरंगें कुछ भी नहीं हैं।

समुद्र लहर तो थोड़िया, मन लहरे घनियाय।
केते आय समाइया, केते जाय बिसराय॥

हमलोगों के मन में सुबह से कितनी इच्छाएँ उठीं, ठिकाना नहीं। कुछ याद है, बहुत नहीं भी याद है। ताँता लगा हुआ है—एक इच्छा पूरी भी

नहीं हुई कि दूसरी इच्छा तैयार रहती है। इसलिए गो० तुलसीदासजी महाराज रामचरितमानस में लिखते हैं— **काम अछत सुख सपनेहु नाहीं।**

जबतक कामना है तबतक तुम संसार में चाहे कुछ भी बनकर रहोगे, लेकिन दुःख में ही रहोगे, तुम सुखी नहीं हो सकते। सुखी तुम तभी हो सकते हो, जब तुम्हारी इच्छाओं का नाश हो जाय, कामनाओं का अन्त हो जाय—यह कैसे होगा? गो० तुलसीदासजी महाराज कहते हैं कि राम भजन करो, तब इच्छाओं का नाश होगा—

राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा।

राम के भजन के बिना कामनाओं का अन्त नहीं होगा। ये तमाम तरह की कामनाएँ उत्पन्न होती हैं किसलिए? आखिर लोग चाहते क्या हैं? तमाम कामनाओं के अन्दर एक सुख की चाहना है।

सन्त-महात्मा लोग कहते हैं कि राम-भजन करनेवाले को वह सुख मिल जाता है कि जिस सुख को पाकर फिर कामना का उदय नहीं होता है। ईश्वर-भक्ति करने से जो सुख प्राप्त होता है, वह सुख इस जीवन को तो सुखमय बनाकर रखता ही है, इस जीवन के बाद का जो लम्बा जीवन है, उस सारे जीवन को भी सुखमय बना देता है और तब उसके सामने दुःख नहीं आता है, दुःख सदा के लिए फरार हो जाता है। जितने सन्त-महात्मा हुए हैं, सबों का यही कहना है कि ईश्वर का भजन करो; क्योंकि आँख का विषय है रूप। आँख को सुख लगता है रूप से। अच्छा रूप मिल गया तो आँख को सुख लगता है। कान का विषय है शब्द। मन के अनुकूल शब्द मिल गया तो कान को सुख लग गया। इसी तरह हमारे पास ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके अपने-अपने विषय हैं। जिस इन्द्रिय का जो विषय है, उस इन्द्रिय को जब वह मिल जाता है तो सुख लगता है। सन्त-महात्मा लोग कहते हैं कि उसी तरह से जीवात्मा का विषय है परमात्मा, जो भक्ति से प्राप्त होता है। उस जीवात्मा को जब परमात्मा मिल जाता है, तब उसे सुख लगता है; क्योंकि इन्द्रियाँ स्वल्प शक्ति की हैं। इनके जो विषय हैं, वे थोड़े काल के लिए हैं—ऐसा गो० तुलसीदासजी महाराज रामचरितमानस में लिखते हैं। भगवान् राम ने अपनी प्रजा से कहा था कि— **स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदायी।**

यहाँ के विषय को कौन कहे, स्वर्ग में भी जो विषय का सुख है, वह भी थोड़े काल के लिए है। अन्त में दुःख देनेवाले हैं। वह सुख जैसा उसके उपभोग काल में भले ही इन्द्रियों को प्रतीत होता है, लेकिन परिणाम उसका दुःखरूप ही है। इसलिए इन्द्रियों के द्वारा जो सुख लगता है, वह थोड़े काल के लिए होता है,फिर छूट जाता है। संत-महात्मा लोग कहते हैं कि सुखस्वरूप परमात्मा जो है, अनन्त है। यदि तुम उसको प्राप्त कर लो तो ऐसा सुख लगेगा कि कहा नहीं जा सकता है! सूरदासजी महाराज कहते हैं कि—

कहि न जाय या सुख की महिमा,
ज्यों गूँगो गुर खायो॥

तुम महान् हो, भले ही तुम अपने को तुच्छ समझते हो—यह तुम्हारी अपनी इच्छा है। यदि तुम अपने को पहचान लो तो इस दुःखालय (संसार) से सदा के लिए छूटकर निजानन्द में निमग्न हो जाओगे। फिर द्वैत में कभी आना नहीं होगा। कठोपनिषद् में आया है—

अशरीरँ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥

इसलिए इन सब बातों को ध्यान से सुनिये और ठीक-ठीक समझिये और समझकर जीवन में थोड़ा-थोड़ा उतारिये भी, तब मनुष्य-जीवन का कल्याण होगा। इसीलिए यह अखिल भारतीय संतमत-सत्संग का आयोजन किया गया है।

बोलिये श्रीसद्गुरु महाराज की जय!

◆